ईश्वर विश्वास

सब से पहली बात जो वेद और आर्य समाज सिखलाता है और जिस की क्रियात्मक शिक्षा महर्षि दयानन्द ने अपने पवित्र जीवन में दी, वह है "ईश्वर विश्वास"। परमात्मा पर अटल विश्वास रख कर अपनी जीवन यात्रा को आरम्भ करने का उपदेश शास्त्र देता है। जब शिशु जन्म लेता है, तो शास्त्र कहता है कि सर्व प्रथम शहद से सोने की सलाई द्वारा शिशु की जिह्वा पर 'ओम्' का अक्षर लिख दिया जाय और कान में "वेदोऽसि" कहा जाय, उसका अर्थ यह है कि "ओ-आने वाले नन्हे जीव! तूने इस संसार की यात्रा करनी है, तू अकेला है, इस यात्रा को सफलता से तय करने के लिये 'ओम्' को अपना साथी बना, उसकी मित्रता प्राप्त कर और वेद रूप हो कर अर्थात् वेद की आज्ञाओं पर आचरण करता हुआ अपने जीवन को सुखी बना!" जन्मघुटी में ही एक आर्य बच्चे को सफल जीवन का रहस्य बता दिया जाता था और उसके मन पर यह अंकित हो जाता था कि भगवान पर ही भरोसा और विश्वास किया जा सकता है। दुनिया की सब शक्तियां शत्रु हो सकती हैं, संसार के दूसरे लोग समय पर हाथ खैंच सकते है, किन्तु एक परमात्मा की महानशक्ति है, जो कभी साथ नहीं छोड़ती और सदैव हमारे अङ्ग-सङ्ग रहती है और जब भगवान हमारा साथी और मित्र बन जाता है, तो संसार की कोई भी शक्ति हमें क्षति नहीं पहुंचा सकती।

ऋग्वेद के दूसरे मण्डल के तेइसवें सूक्त का पांचवां मन्त्र है कि—"न तमं हो न दुरितं कुतश्चन नारा तयस्तितिरू न द्वयाविन विश्वा इदस्माद ध्वरसो विवाधसेयम् सुगापा रक्षसिब्रह्मणस्पते।"

"उसको न किसी ओर से शोक प्राप्त होता है, न संताप, न उसको शत्रु दबाते हैं न वंचक। सारे बहकाने वाले उस से परे हटते रहते हैं, जिस के रक्षक बन कर हे परमात्मा ! तुम स्वयं रक्षा करते हो।"

सचमुच जिस का रक्षक स्वयं परमात्मा बन गया उस को कोई क्या क्षति पहुंचा सकेगा—

जाको राखे साईयां मार सके न कोय।
बाल न बांका कर सके जो जग वैरी होय॥

महर्षि स्वामी दयानन्द ने जब सत्य सनातन वैदिक धर्म का प्रचार शुरू किया था तो वे अकेले थे। सिवाय भगवान के उनका साथी कौन था ? किन्तु ईश्वर विश्वास अकेले स्वामी दयानन्द को हज़ारों लाखों और करोड़ों पर विजय प्राप्त कराता रहा। जब एक रियासत के महाराज ने स्वामी जी से कहा कि "आप मूर्त्ति पूजा का खंडन न करें" तो महर्षि ने उत्तर दिया कि—"तुम्हारा कहना मानूं, या उस महाराजों के महाराज का कहना मानूं, तुम्हारी रियासत से तो मैं दो दिन की दौड़ लगा कर बाहर हो सकता हूँ, लेकिन उस महाराजा के साम्राज्य से तो जन्म जन्मान्तर और युग युगान्तर तक दौड़ लगाने के पश्चात् भी बाहर नहीं निकल

सकता, इस लिए मैं तो भगवानही की आज्ञा का पालन करूंगा !" यह है प्रभु का अटल विश्वास !

ऋग्वेद के पहले ही मण्डल में बड़ी सुन्दर प्रार्थना आती है कि—

"ओम् सख्येत इन्द्र वाजिनो माभेव शवसस्पते"

"हे इन्द्र ! आप की दोस्ती में हम बलवान हुए किसी से न डरें।"

ईश्वर विश्वास मनुष्य को निडर और निर्भय बना देता है, वह हमेशा सत्य पर आरूढ़ रहता है। उसका पांव डगमगाता नहीं। चट्टान की नाईं खड़ा रह कर वह धर्म, देश और जाति के सब शत्रुओंसे रणबांकुरेकी तरह युद्ध करता है। उसका दिल कभी कमज़ोर नहीं होता। उसे बच्चों का रोना, माता का विलाप, पत्नी का करुण क्रन्दन, अपनी निर्धनता और बेकारी गिरने पर विवश नहीं करती। वह तो हक़ीक़तराय का रूप बन जाता है और ध्रुव और प्रह्लाद की स्मृति को ताज़ा कर देता है।

'ईश्वर विश्वास' का शब्द जब सामने आता है, तो तीन बातें सामने आती हैं। प्रथम—ईश्वर है, द्वितीय—उसी की भक्ति करनी चाहिए, और तृतीय—भगवान् जो करते हैं, हमारे कल्याण के लिए करते हैं।

स्वामी जी ने वेद के पवित्र मन्त्रों से बतलाया है कि ईश्वर एक है और यथार्थ में है। फिर वेद मन्त्रों से बतलाया है कि

ईश्वर सर्वव्यापक है, सब स्थानों पर स्थित है। उसकी ईंट, पत्थर या लकड़ी आदि की मूर्ति नहीं स्थापित की जा सकती। वह तो सर्वत्र विद्यमान है और प्रत्येक कण में विराजमान है। उसकी भक्ति के लिए मूर्ति की आवश्यकता नहीं, प्रत्युत अपने चञ्चल मन को वश में करके, हृदय के सिंहासन पर बैठे हुए प्रभु के दर्शन, आत्मा द्वारा कराने चाहिएं। इसकी सारी विधि स्वामी जी ने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के उपासना विषय में लिख दी है।

ईश्वर हमारा पिता है, वही माता है, बन्धु है। इस लिए यह कदापि नहीं हो सकता कि वह हमें कष्ट या दुख दे। यदि संसार के अन्दर रहते हुए, हमारे ऊपर कष्ट के पर्वत और दुःखों की बिजलियां गिरती हैं, या दुःख की दल-दल में हम फंस जाते हैं, तो उनसे बाहर निकलने का पूरा यत्न होना चाहिए, भगवान से भी इसके लिए सहायता मांगनी चाहिए। इस प्रयत्न और प्रार्थना पर भी यदि कुछ न बने, तो समझना चाहिए कि हमारा कल्याण इसी तरह होता है। हम अल्पज्ञ हैं, पूर्णतया कुछ भी नहीं जानते, हमारी निगाह दूर तक नहीं जाती, बहुत क्षुद्र और छोटी है। किन्तु भगवान् सर्वज्ञ हैं। वह बहुत दूर—अनन्त तक देखते हैं, इस लिए वह हमारे से अधिक जानते हैं। हमारा कल्याण कड़वी कसैली औषधि से हो सकता है या मीठे शर्बत से, बहुत बड़े आपरेशन से हो सकता है या साधारण मलहम पट्टी से—यह वह अच्छी तरह से जानते हैं। इस कारण हर दशा में

यही समझना चाहिए कि भगवान हमारे कल्याण के लिए सब कुछ कर रहे हैं। उनकी दया दृष्टि दिन रात होती है। किन्तु यह कभी सुन्दर सुनहले रूप में नज़र आती है, कभी विकट भीषण और वीभत्स रूप में, पर होती उनकी कृपा और दया ही है। यह ईश्वर बिश्वास का तीसरा रूप है।

आत्म विश्वास

किन्तु ईश्वर-विश्वास का यह अर्थ नहीं कि आलस्य और मलिनता में पड़ कर सब कुछ भगवान पर ही छोड़ दिया जाए। वेद ऐसी शिक्षा नहीं देता। यह 'अनार्य्यत्व' है कि मनुष्य आलसी बन कर पड़ा रहे। हमारी जाति में एक बार ऐसा समय भी आया था जब कि लोगों ने अपना लक्ष्य बना लिया था कि—

राम भरोसे बैठ कर रहो खाट पर सोय।
अनहोनी होनी नहीं होनी हो सो होय॥

यह अवैदिक है। निश्चय ही वेद ईश्वर विश्वास सिखाता है और कहता है कि "भव सागर से तरने को भगवान् का पल्ला पकड़ो।" लेकिन इसके साथ ही वह यह भी कहता है कि "पल्ला पकड़ने के लिए तेरे पास पर्याप्त शक्ति होनी चाहिए, तुम्हारे हाथ परिपक्व और दृढ़ होने चाहिएं। यह शक्ति तुम्हें स्वयं पैदा करनी होगी।"

यजुर्वेद के २३ वें अध्याय में कहा है—

"ओ३म स्वयं वाजिन तन्वं कल्पयस्व स्वयं यजस्व

स्वयं जुषस्व । महिमा तेऽन्येन न सन्नशे ।" (२३—१५)
"हे बलवान ! तू स्वयं अपने शरीर को बढ़ा, फैला और दृढ़ कर इसी में तेरा स्वराज्य है, (महीधर) स्वयं यज्ञ कर और स्वयं ही प्रेम व सेवा करने वाला हो । तू अपनी महिमा को आप बढ़ा, क्योंकि तेरी महिमा कोई दूसरा बढ़ाने वाला नहीं ।" ईश्वर विश्वास के साथ अपने आप पर, अपने आत्मा पर—भरोसा और विश्वास होना चाहिए। कभी हिम्मत नहीं हारनी चाहिए। आखिर परमात्मा और जीवात्मा में अंतर ही कितना है, केवल इतना कि परमात्मा तो सत्‌चित्त आनन्द है और जीवात्मा सत् और चित्त है । बाकी भेद रह जाता है केवल 'आनन्द' का। परमात्मा में तीन शक्तियां हैं और जीवात्मा में दो । इस लिए जीवात्मा को अपने आप पर पूर्ण विश्वास होना चाहिए कि मैं हर काम में प्रभु-कृपा से विजय प्राप्त कर सकता हूँ ।

आत्म विश्वास कैसे पैदा हो--

आत्म विश्वास के लिए प्रथम आवश्यक वस्तु दृढ़ शरीर है। दृढ़ शरीर करने के तीन साधन हैं—

१. पुष्टिकारक सात्विक भोजन
२. व्यायाम और वायु सेवन
३. ब्रह्मचर्य-पालन

यदि इन तीनों साधनों पर अमल किया जाए तो कोई कारण नहीं कि शरीर हृष्ट पुष्ट और दृढ़ न बन जाए। महर्षि ने

देखा कि आत्म विश्वास की प्रथम वस्तु ही की जड़ों पर कुल्हाड़ा चलाया जा रहा है । बाल-विवाह इस जाति के नौजवानों को मज़बूत बनने नहीं देता, रद्दी भोजन इन्हें विनाश की ओर ले जा रहा है, और दिन भर दुकानों पर बैठे रहना इनके जीवन का उद्देश्य बन गया है । इस लिए स्वामी जी ने बाल-विवाह का पूरे बल के साथ खण्डन किया और यह हर्ष की बात है कि अब बाल-विवाह की प्रथा दूर हो रही है । किन्तु स्वामी जी ने ब्रह्मचर्य की जो बात बताई थी, उस पर पूर्ण रूप से अमल नहीं हो रहा । माता पिता अपने बच्चों को ब्रह्मचर्य के सम्बन्ध में साफ़ साफ़ नहीं बताते, कुछ शर्माते से हैं । किन्तु शायद वह यह नहीं जानते कि उनकी यह शर्म उन की सन्तान का सर्वनाश कर डालेगी । बच्चों को सावधान कर देना चाहिए कि खाद्य पदार्थों का जो इत्र (जौहर) उन के शरीर में कई सप्ताहों के पश्चात् तैयार होता है, उसका नाम 'वीर्य' है । यह वीर्य यदि शरीर में स्थिर रखा जाए तो प्रभु के दर्शन करा देता है और दिल व दिमाग़ को शक्तिशाली बना कर अद्वितीय काम करने के योग्य बना देता है । इस लिए इसे व्यर्थ में न गंवाना चाहिए ।

आत्म विश्वास के लिए जहां, शरीर का हृष्ट पुष्ट होना आवश्यक है, वहां, मन का पवित्र तथा स्थिर होना भी ज़रूरी है । मनुष्य की जीवन-यात्रा का बहुत अधिक निर्भर मन पर होता

है। मन की शक्ति, ईश्वर शक्ति के बाद दूसरे दर्जे पर है। महा-भारत में तो यहां तक कह दिया गया है कि—

मन एव मनुष्यानां कारणं बन्ध मोक्षयो
"मन ही मनुष्य के बन्धन और मोक्ष का कारण है।"
उद्योग पर्व महाभारत में यह भी कहा है कि—
यथा यथा हि पुरुषः कल्याणे कुरुते मनः।
तथा तथाऽस्य सर्वथाः सिध्यन्ते नात्र संशयः॥

"जैसे जैसे पुरुष कल्याण में मन लगाता है, वैसे वैसे उस के सारे काम सिद्ध होते चले जाते हैं, इस में संशय नहीं।"

भाव यह है कि मानसिक शक्ति एक प्रबल शक्ति है। किन्तु यदि मन बुराई की ओर चल दिया तो उस की बुराई का कोई ठिकाना नहीं रहता, और यदि नेकी की ओर झुक गया तो फिर उधर भी पराकाष्ठा कर देता है। इसी लिए मन को सुधारने और बनाने के लिए वेद ने पूरे ज़ोर के साथ हिदायत की है कि मन के अन्दर कभी बुरे विचार, शक्तिहीन करने वाली बातें, और पतित करने वाली युक्तियां न दाख़िल होने दो। सदैव आशावादी बने रहो। निराशा को निकट न फटकने दो। यह कभी भी न विचारो कि 'अब कलियुग है, कुछ नहीं बन सकता!' सब कुछ बन सकता है, भाई!

'हिम्मत करे इन्सान तो क्या हो नहीं सकता'

इस मन को कभी डगमगाने न दो । बार बार भगवान से प्रार्थना करो—

'तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु'

और याद रखो—

बड़ी नायाब शै है ये दिले बेताब सीने में।
हज़ारों क़ीमती लालोगौहर हैं इस दफ़ीने में॥

इस तरह से जब शरीर और मन दृढ़ (स्थिर) हो तो फिर आत्म विश्वास का भाव स्वयमेव पैदा हो जाता है । तब मुर्दा और मरियल लोगों की तरह अपमान और निर्लज्जता, गुलामी और दुःखों से भरपूर जीवन बसर करने पर विवश नहीं होना पड़ता, अपितु शेरों की नाईं अपने देश और जाति का गौरव बढ़ाते हुये जीवित रहने का अवसर प्राप्त होता है।

भ्रातृभाव

किंतु वेद यहीं तक पहुंच कर नहीं छोड़ देता। अभी मनुष्य मंज़िल पर नहीं पहुंचा । ईश्वर विश्वास और आत्म विश्वास उसे कुन्दन बना कर अब उसे अन्तिम और वास्तविक सीढ़ी पर ले आता है। जब मनुष्य के उद्देश्य की पूर्ति का समय आ जाता है, जब भगवान के विश्वास, उस की भक्ति और उस की इच्छानुसार जीवन व्यतीत करने की भावना जागृत हो उठती है, जब आत्म विश्वास उस का पथ प्रदर्शक बन जाता है और जब वह प्रभु-कृपा का पात्र बनने के साथ अपने हाथ की कमाई भी

खाता है—तब मनुष्य का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि जो प्रसाद उस ने प्रभु विश्वास से पाया है, उसे अकेला न खाए, अपितु बांट कर खाए। वेद में मनुष्यों को उपदेश भी दिया है कि "परस्पर एक दूसरे की सहायता करो...वह मित्र ही क्या, जो समय पर मित्र की सहायता न करे!"......"इकट्ठे मिल कर रहो, तुम्हारे खाने का स्थान एक हो, तुम्हारे पीने का स्थान एक हो, बिखरे मत रहो, सङ्गठित हो कर रहो और इकट्ठे मिल कर चलो। एक दूसरे के दुःखदर्द में उस के साथी बनो।"

यह सारे उपदेश वेद में पाये जाते हैं। महर्षि दयानन्द ने जब अपना आन्दोलन आरम्भ किया तो उन्हों ने देखा कि आर्य हिंदू जाति में सब से बड़ी कमी यह है कि उन के अन्दर भ्रातृभाव नहीं है। सब अलग अलग पड़े हैं। चार वर्णों के अतिरिक्त हिन्दुओं ने कितने ही हज़ार जातियां व उपजातियां बना रखी हैं। उनका कोई सम्मिलित प्लेटफार्म नहीं रहा। सब एक दूसरे के विरुद्ध लड़-लड़ कर मर रहे हैं तब महर्षि दयानन्द ने वेद की सच्चाई को लेकर लोगों से कहा कि—"तुम उलटे मार्ग पर जा रहे हो। यह तुम्हारा मार्ग सर्वनाश और प्रलय का मार्ग है।"

आर्य समाज ने हिंदू जाति में भ्रातृ-भाव की भावना जागृत करने के लिए यह आवश्यक समझा कि कुछ क्रियात्मिक कार्य करके दिखाया जाय। इस लिए आर्य समाज की स्थापना के बाद जहां कहीं भी देश में सङ्कट या मुसीबत आई और लोग

दु:खी हुए, आर्य समाज के सेवकों ने वहां पहुंच कर उन की सेवा करने का प्रयत्न किया। बीकानेर के अकाल में जब लोग भूख और प्यास से तड़प रहे थे, कांगड़ा के भूकम्प में जब सब यात्री और वहां के बासी दब गए थे, माला बार के विद्रोह में जब मोपलों ने हिन्दुओं के मन्दिर गिरा दिए थे, सहस्रों हिन्दू नर-नारियों को मौत के घाट उतार दिया था, अढ़ाई हज़ार की चोटियां काट दी गई थीं, लाखों हिन्दू बे-घर-बार होकर उजड़ गए थे, जब गढ़वाल, उड़ीसा और सी० पी० के अकाल से देश में हाहाकार हो रहा था और देश के प्रत्येक कोने से बेकसों और बेबसों की चीत्कार प्रतिध्वनित होती थी, जब जम्मू रियासत में अन्न के कारण मनुष्य और पशु इकट्ठे मर रहे थे और मृत्यु का ग्रास बन रहे थे, जब कोहाट में हिन्दुओं का सर्वनाश कर दिया गया था, जब बिहार और कोयटा के प्रलय-कारी प्रचण्ड भूकम्प ने त्राहि त्राहि मचा दी थी, और इसी तरह से जब अन्य स्थानों पर प्रलय प्रचण्ड भभक भभक कर प्रज्वलित होने वाली अग्नि ने, किसी के रोके न रुकने वाले तूफ़ानों ने, अमीर ग़रीब का अन्तर न देखने वाली प्लेग ने लोगों का नाक में दम कर रखा था—तब आर्य समाज के सेवक ही थे जो सब से पहले ऐसे स्थानों पर पहुंचे और उन्होंने अपने आप को भय और ख़तरा में डाल कर सेवा का काम किया। आर्य समाज की स्थापना से पहले कभी किसी को भूंचाल का विचार नहीं आया

कि पीड़ित भाइयों की सहायता करनी चाहिये। हां, आर्यसमाज ने भ्रातृ-भाव की जो भावना जागृत कर दी है, उस ने दूसरे लोगों को भी अब दीन दुखियों की सेवा करने के लिए विवश कर दिया है।

आर्य समाज ही ने सब से पहले अनाथालय, विधवाश्रम, पाठशालाएं स्कूल, कालिज और गुरुकुल जारी किए, और हिन्दू जाति को रास्ता बतलाया कि केवल माला हाथ में लेकर बैठे रहने से कुछ न बनेगा। अपितु भ्रातृ-भाव पैदा करने से ही हिंदू जाति में सङ्गठन पैदा हो सकेगा।

आर्य समाज ने पूरे ध्यान से देखा कि आर्य-समाज जाति बहुत बिखर गई है, इस लिए इसे इकट्ठा करने के लिए उस ने 'शुद्धि' का सिलसिला भी जारी किया। अछूतोद्धार भी भ्रातृ-भाव का एक अंश है। आर्य समाज इस काम को भी कर रहा है, अपनी शक्ति से बढ़ कर कर रहा है। यदि हिन्दुओं ने आर्य समाज का साथ पूर्णरूप से दिया होता और ईश्वर-विश्वास, आत्म-विश्वास और भ्रातृ-भाव के वैदिक सिद्धान्तों पर आचरण शुरू कर दिया होता तो आज दुनिया की नहीं तो कम से कम भारत की अवस्था, कुछ और ही होती। तब ऋषियों की यह पावन और पवित्र भूमि गौ-माता के रक्त से रञ्जित न होती, तब ऋषि सन्तान पतित न होती, तब यह रोज़ रोज़ के झगड़े,

फ़िसाद, हत्याएं, कुकर्म, व्यभिचार और अत्याचार न होते। ३५ करोड़ के ३५ करोड़ भारतवासी एक स्वर से "वैदिक धर्म की जय" और "भारत मां की जय" के गगन भेदी नारे लगाते और सुख से जीवन व्यतीत करते।

अभी कुछ नहीं बिगड़ा। वेद के इन उद्देश्यों के प्रचार के लिए आर्य समाज का साथ दो। भ्रम जल और वहमों को छोड़ कर एक भगवान की भक्ति करते हुए, अपने आप पर विश्वास करते हुए, सङ्गठित हो जाओ। हिन्दु जाति का, हिन्दुस्तान का और सारे संसार का कल्याण इसी में है—और कोई मार्ग नहीं—कोई रास्ता नहीं !

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब, सिंध, बिलोचिस्तान, लाहौर श्री महात्मा हंसराज जी की संरक्षता में यह सारे काम कर रही है। जहां कहीं हिन्दुओं पर विपत्ति आई है, इस सभा की ओर से महात्मा हंसराज जी ने सेवा तथा सहायता का कार्य्य कराया है। यही नहीं अपितु वेद-प्रचार के लिए यह सभा इस समय तक ८-१० लाख रुपया व्यय कर चुकी है। बीसियों पुस्तकें तथा ट्रैक्ट प्रकाशित कर चुकी है। इस सभा की आप जितनी सहायता करेंगे उतना ही संसार, देश तथा जाति का उद्धार होगा।

प्रकाशक

प्रो० दीवानचन्द शर्मा एम० ए०

मंत्री, आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, लाहौर

वीर मिलाप प्रेस, बाहर मोरी दरवाजा, लाहौर।